आदिवासियों के साथ से ही बचेंगे वन्य जीव

बाबा मायाराम

पहले हम दहिया (झूम) खेती करते थे। खूब कुटकी पकती थी। रामबुहारी बनाते थे, शहद तोड़ते थे, ढोर (मवेशी) रखते थे। घी खाते और बेचते थे। सिर में भी घी लगाते थे। लेकिन अब वनविभाग ने दहिया पर रोक लगा दी है। जंगल में ढोर चरने पर रोक लगाई जा रही है। रामबुहारी के पेड़ कम हो गए हैं, शहद भी कम मिलती है। ऐसे में आगे जिंदा कैसे रहेंगे ? यह कहना है काजरी के खंकरलाल, कोमल, नेपालसिंह और उजयार सिंह का।

काजरी एक पहाड़ी कोरकू आदिवासी गांव है जो सतपुड़ा राष्ट्रीय

उद्यान के अंदर है। सतपुड़ा की रानी पचमढ़ी की सबसे उंची चोटी धूपगढ़ से होकर काजरी के लिए रास्ता है। पचमढ़ी से इसकी दूरी 22-23 किलोमीटर है। इसके पहले एक गांव रोरीघाट है , जो पचमढ़ी से 18 किलोमीटर दूर है। यहां पहुंचने का रास्ता पैदल है। लेकिन अब जंगल विभाग ने कच्ची सड़क भी बना दी है। ऊंचे-नीचे पहाड़ी रास्तों से यहां पहुंचना रोमांचक और अद्भुत था।

यहां के लोगों की जीविका का मुख्य स्त्रोत वनोपज और नागद्वारी मेले से होनेवाली आय है। पहले दहिया (झूम खेती) होती थी, जो साल भर

(बाकी पेज 8 पर)

पहले पेज से आगे

आदिवासियों के साथ से ही बचेंगे वन्य जीव

खाद्य सुरक्षा प्रदान करती थी। झूम खेती के बारे में गांववाले बताते हैं कि उसे करने का तरीका यह है कि बारिश के पहले ललताना खरपतवार, इसे स्थानीय बोली में जुरंटा भी कहते हैं या छोटी झाड़ी काटके जंगल की जमीन पर बिछा देते है, उसमें आग लगा देते हैं। चाहे उस जगह पर पत्थर ही क्यों न हो ? जब जुरंटा जलकर राख हो जाता है तो उसी राख में कुटकी, कांगनी फेंक देते है। पानी गिरता है तो वह उग जाती है। बाद में दो-तीन बार निंदाई-गुड़ाई करनी पड़ती है। और फसल पक जाती है बस। इस खेती में एक या दो साल में जगह बदलनी पड़ती है। इसलिए इसे अंग्रेजी में सिटिंग कल्टीवेशन कहते है। एक परिवार एक या दो जगह चिन्हित कर लेता है और बारी-बारी से वहां खेती करता है। इसमें किसी का मालिकाना नहीं होता। इसमें भूमि स्वामित्व जैसा कुछ नहीं होता।

वैसे भी आदिवासियों में यह सोच नई है। गांववालों ने बताया कि हर साल उनकी जोतने-बोने की क्षमता पर जमीन का रकबा भी बदलता रहता था। लेकिन अब करीब दो दशक से यहां दहिया बंद है। वनविभाग ने इस पर रोक लगा दी है, यह कहकर कि इससे जैव विविधता का नाश होता है। जबकि गांव के लोग कहते हैं कि हम तो ललताना को जलाकर यह खेती कर रहे थे, जिसे वनविभाग खुद खत्म करना चाहता है। इसके वजह से अन्य पेड़-पौधे और वनस्पतियां नहीं पनप पातीं। दहिया लोगों के पेट भरने का मुख्य साधन थी। उसमें कुटकी खूब पकती थी। अब मुश्किल हो रही है।

यहां रामबुहारी का पेड़ भी कम हो गया है। इससे वे झाड़ू बनाकर बेचा करते थे। रामबुहारी एक प्रकार की घास होती है जिसके तिनको को एक साथ बांधकर नरम बुहारियां बनाई जाती हैं। इनको खरीदने के लिए ठेकेदार गांव में ही पहुंचते हैं या आदिवासी खुद पचमढ़ी में बेचने आते है। आमतौर पर ठेकेदार या पचमढ़ी के ठेकेदार कम पैसों में इन्हें खरीदते हैं और फिर ज्यादा पैसों में बेचते है। लेकिन अब यह रामबुहारी की घास भी कम होने लगी है।

इसके अलावा शहद तोड़ने का काम भी करते हैं। यह जोखिम भरा काम है। मधुमक्खी के बड़े-बड़े छत्ते पहाड़ों में लगते है। इसे वे झूला लगाकर तोड़ते है। महुआ बीनते हैं। आम एकत्र करते हैं। पहले कभी वे अभाव के दिनों में आम की गुठली के आटे की रोटी भी खाते थे। ढोर रखते हैं। ललताना की वजह से ढोरों को चरने के लिए घास भी कम मिलती हैं।

गांव के लोगों ने बताया कि वनविभाग वाले कुछ दिन पहले स्वेच्छा से हटने का फार्म भरवा कर ले गए है। हालांकि उन्होंने कहा कि हम हटना नहीं चाहते। उनके कई सवाल आशंकाएं हैं ? क्या उन्हें बाहर ऐसा जंगल, आबोहवा और आजादी मिलेगी। उनके यहां पीने का पानी साल भर झरने से बिना बिजली के आता है। टपर झरने से पानी लाने की व्यवस्था खुद वनविभाग ने की है।

रोरीघाट के लोग पिछले साल तक दहिया खेती करते थे। अब इस पर पूरी तरह रोक लगा दी गई है। वैसे तो वनविभाग की तरफ से हटने के लिए ज्यादा दबाव नहीं बनाया जा रहा लेकिन यह कहा जाता है कि जाना तो पड़ेगा आज नही तो कल। इससे गांववाले मायूस है। उन्होंने कहा कि आज तक हम पर शिकार का कोई मामला नहीं है फिर हमें क्यों हटाया जा रहा है ? यह इसी गांव की नहीं, ज्यादातर गांव के लोगों का कहना है। बल्कि आदिवासी वन्य प्राणियों को बचाने में मददगार हैं और अगर वनविभाग अपना रूख बदले तो और मदद कर सकते है। क्योंकि आदिवासी वनों व वन्य प्राणियों के सबसे नजदीक रहते आए हैं व इस कारण उन्हें इनकी सबसे अच्छी जानकारी होती है।

इसमें सबसे बड़ी समस्या यह आ रही है कि बाघ बचाने के लिए कुछ संरक्षित क्षेत्र घोषित किए जा रहे हैं और वहां से लोगों को हटाया जा रहा है। उनकी रोजी-रोटी छीनी जा रही है। जैसे काजरी-रोरीघाट के लोगों की खेती बंद कर दी। वनोपज पर भी रोक लगाई जा रही है। इससे बिना वजह आदिवासियों में असंतोष और टकराव पैदा किया जा रहा है, जो किसी भी तरह से उचित नहीं है।

यह नीति न आदिवासियों के हित में, न वन्य जीवों के। बल्कि हम उनके सहयोग से उजड़ रहे जंगल को हरा-भरा बना सकते है। वन संरक्षण पर प्रभावी ढंग से काम कर सकते हैं। जिस तरह तवा जलाशय में मछली और जल जीव संरक्षण पर मछुआ सहकारिता के माध्यम से आदिवासियों ने किया था। जंगलों में आग नियंत्रण पर तो उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है ही।

वनविभाग अपने दम पर जंगल और जंगली जानवर बचा सकता है क्या ? इसके जवाब में माना के एक बुजुर्ग आदिवासी ने जवाब दिया कि जब बड़े-बड़े शिकारी आ जाएंगे, उनके सामने वे कुछ नहीं कर सकते। जंगल की आग कौन बुझाएगा ? पर्यावरण और विकासात्मक मुद्दों पर सतत लेखन करने वाले जाने-माने पत्रकार भारत डोगरा का भी मानना है कि अब इसमें दो राय नहीं है कि सिर्फ आदिवासियों के सहयोग से ही वन्य जीव बचाए जा सकते है।

(सी.एस.ई. मीडिया फैलोशिप के तहत रिपोर्ट)